एकांकी संग्रह

एक अंक वाले नाटकों को **एकांकी** कहते हैं। अंग्रेजी के 'वन ऐक्ट प्ले' शब्द के लिए हिंदी में 'एकांकी नाटक' और 'एकांकी' दोनों ही शब्दों का समान रूप से व्यवहार होता है।

पश्चिम में एकांकी २०वीं शताब्दी में, विशेषतः प्रथम महायुद्ध के बाद, अत्यन्त प्रचलित और लोकप्रिय हुआ। हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में उसका व्यापक प्रचलन इस शताब्दी के चौथे दशक में हुआ। इसका यह अर्थ नहीं कि एकांकी साहित्य की सर्वथा आभिजात्यहीन विधा है। पूर्व और पश्चिम दोनों के नाट्य साहित्य में उसके निकटवर्ती रूप मिलते हैं। सस्कृंत नाट्यशास्त्र में नायक के चरित, इतिवृत्त, रस आदि के आधार पर रूपकों और उपरूपकों के जो भेद किए गए उनमें से अनेक को डॉ° कीथ ने एकांकी नाटक कहा है। इस प्रकार 'दशरूपक' और 'साहित्यदर्पण' में वर्णित व्यायोग, प्रहसन, भाग, वीथी, नाटिका, गोष्ठी, सट्टक, नाटयरासक, प्रकाशिका, उल्लाप्य, काव्य प्रेंखण, श्रीगदित, विलासिका, प्रकरणिका, हल्लीश आदि रूपकों और उपरूपकों को आधुनिक एकांकी के निकट संबंधी कहना अनुचित न होगा। 'साहित्यदर्पण में 'एकांक' शब्द का प्रयोग भी हुआ है :

> *भाणः स्याद् धूर्तचरितो नानावस्थांतरात्मकः।*
> *एकांक एक एवात्र निपुणः पण्डितो विटः॥*
>
> और
>
> *ख्यातेतिवृत्तो व्यायोगः स्वल्पस्त्रीजनसंयुतः।*
> *हीनो गर्भविमर्शाभ्यां नरैर्बहुभिराश्रितः॥*
> एकांककश्च भवेत्...

पश्चिम के नाट्यसाहित्य में आधुनिक एकांकी का सबसे प्रारंभिक और अविकसित किन्तु निकटवर्ती रूप 'इंटरल्यूड' है। १५वीं और १६वीं शताब्दियों में प्रचलित सदाचार और नैतिक शिक्षापूर्ण अंग्रेजी मोरैलिटी नाटकों के कोरे उपदेश से पैदा हुई ऊब को दूर करने के लिए प्रहसनपूर्ण अंश भी जोड़ दिए जाते हैं। ऐसे ही खंड इंटरल्यूड कहे जाते थे। क्रमशः ये मोरैलिटी नाटकों से स्वतंत्र हो गए और अंत में उनकी परिणति व्यंग्य-विनोद-प्रधान तीन पात्रों के छोटे नाटकों में हुई।

'कर्टेन रेज़र' या पटोन्नायक कहा जानेवाला एकांकी, जिसकी तुलना संस्कृत नाटकों के अर्थोपक्षेपक या प्रेक्षणक से की जा सकती है, पश्चिम में आधुनिक एकांकियों का निकटतम पूर्ववर्ती था। रात्रि में देर से खाना खाने के बाद रंगशालाओं में आनेवाले संभ्रांत सामाजिकों के कारण समय से आनेवाले साधारण सामाजिकों को बड़ी असुविधा होती थी। रंगशालाओं के मालिकों ने इस बीच साधारण सामाजिकों को मनोरंजन में व्यस्त रखने के लिए द्विपात्रीय प्रहसनपूर्ण संवाद प्रस्तुत करना शुरू किया। इस प्रकार के स्वतंत्र संवाद को ही 'कर्टेन रेज़र' कहा जाता था। इसमें कथानक एवं जीवन के यथार्थ और नाटकीय द्वंद्व का अभाव रहता था। बाद में 'कर्टेन रेज़र' के स्थान पर यथार्थ जीवन को लेकर सुगठित कथानक और नाटकीय द्वंद्ववाले छोटे नाटक प्रस्तुत किए जाने लगे। इनके विकास का अगला कदम आधुनिक एकांकी था।

एकांकी इतना लोकप्रिय हो उठा कि बड़े नाटकों की रक्षा करने के लिए व्यावसायिक रंगशालाओं ने उसे अपने यहाँ से निकालना शुरू किया। लेकिन उसमें प्रयोग और विकास की संभावनाओं को देखकर पश्चिम के कई देशों में अव्यावसायिक और प्रयोगात्मक रंगमंचीय आंदोलनों ने उसे अपना लिया। लंदन, पेरिस, बर्लिन, डब्लिन, शिकागो, न्यूयार्क

आदि ने इस नए ढंग के नाटक और उसके रंगमंच को आगे बढ़ाया। इसके अतिरिक्त एकांकी नाटक को पश्चिम के अनेक महान् या सम्मानित लेखकों का बल मिला। ऐसे लेखकों में रूस के चेख़व, गोर्की और एकरीनोव, फ्रांस के जिराउदो, सार्त्र और एनाइल, जर्मनी के टालर और ब्रेख्ट, इटली के पिरैंदेली तथा इंग्लैंड, आयरलैंड और अमरीका के आस्कर वाइल्ड, गाल्सवर्दी, जे.एम.बैरी, लार्ड डनसैनी, सिंज, शिआँ ओ' केसी, यूजीन ओ'नील, नोएल कावर्ड, टी.एस.इलियट, क्रिस्टोफ़र फ्राई, ग्रैहम ग्रीन, मिलर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। रंगमंचीय आंदोलनों और इन लेखकों के सम्मिलित एवं अदम्य प्रयोगात्मक साहस और उत्साह के फलस्वरूप आधुनिक एकांकी सर्वथा नई, स्वतंत्र और सुस्पष्ट विधा के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। उनकी कृतियों के आधार पर एकांकी नाटकों की सामान्य विशेषताओं का अध्ययन किया जा सकता है।

रचनाविधान

[संपादित करें]

सतह पर ही बड़े नाटकों और एकांकियों का आकारगत अंतर स्पष्ट हो जाता है। एकांकी नाटक साधारणत: २० से लेकर ३० मिनट में प्रदर्शित किए जा सकते हैं, जबकि तीन, चार या पाँच अंकोंवाले नाटकों के प्रदर्शन में कई घंटे लगते हैं। लेकिन बड़े नाटकों और एकांकियों का आधारभूत अंतर आकारात्मक न होकर रचनात्मक है। पश्चिम के तीन से लेकर पाँच अंकोंवाले नाटकों में दो या दो से अधिक कथानकों को गूँथ दिया जाता था। इस प्रकार उनमें एक प्रधान कथानक और एक या कई उपकथानक होते थे। संस्कृत नाटकों में भी ऐसे उपकथानक होते थे। ऐसे नाटकों में स्थान या दृश्य, काल और घटनाक्रम में अनवरत परिवर्तन स्वाभाविक था। लेकिन एकांकी में यह संभव नहीं। एकांकी किसी एक नाटकीय घटना या मानसिक स्थिति पर आधारित होता है और प्रभाव की एकाग्रता उसका मुख्य लक्ष्य है। इसलिए एकांकी में स्थान, समय और घटना का संकलनत्रय अनिवार्य सा माना गया है। कहानी और गीत की तरह एकांकी की कला घनत्व या एकाग्रता और मितव्ययता की कला है, जिसमें कम से कम उपकरणों के सहारे ज्यादा से ज्यादा प्रभाव उत्पन्न किया जाता है। एकांकी के कथानक का परिप्रेक्ष्य अत्यंत संकुचित होता है, एक ही मुख्य घटना होती है, एक ही मुख्य चरित्र होता है, एक चरमोत्कर्ष होता है। लंबे भाषणों और विस्तृत व्याख्याओं की जगह उसमें संवादलाघव होता है। बड़े नाटक और एकांकी का गुणात्मक भेद इसी से स्पष्ट हो जाता है कि बड़े नाटक के कलेवर को काट छाँटकर एकांकी की रचना नहीं की जा सकती, जिस तरह एकांकी के कलेवर को खींच तानकर बड़े नाटक की रचना नहीं की जा सकती।

संस्कृत नाट्यशास्त्र के अनुसार बड़े नाटक के कथानक के विकास की पाँच स्थितियाँ मानी गई हैं : आरम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम। पश्चिम के नाट्यशास्त्र में भी इन्हीं से बहुत कुछ मिलती जुलती स्थितियों का उल्लेख है : आरम्भ या भूमिका, चरित्रों और घटनाओं के घात प्रतिघात या द्वंद्व से कथानक का चरमोत्कर्ष की ओर आरोह, चरमोत्कर्ष, अवरोह और अंत। पश्चिम के नाटकशास्त्र में द्वंद्व पर बहुत जोर दिया गया है। वस्तुत: नाटक द्वंद्व की कला है; कथा में चरित्रों और घटनाओं के क्रमिक विकास की जगह बड़े नाटक में कुछ चरित्रों के जीवन के द्वंद्वों को उद्‌घाटित कर कथानक को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया जाता है। एकांकी में इस चरमोत्कर्ष की धुरी केवल एक द्वंद्व होता है। बड़े नाटक के कथानक में द्वंद्वों का विकास काफी धीमा हो सकता है, जिसमें सारी घटनाएँ रंगमंच पर प्रस्तुत होती हैं, या उस घटना से कुछ ही पूर्व होता है जो बड़े वेग से द्वंद्व को चरमोत्कर्ष पर पहुँचा देती है। अक्सर यही चरमोत्कर्ष एकांकी का अंत होता है। जीवन की समस्याओं के यथार्थवादी और

मनोवैज्ञानिक चित्रण के अतिरिक्त रचनाविधान की यह विशेषता आधुनिक एकांकी को संस्कृत और पश्चिमी नाट्य साहित्य में उसके निकटवर्ती रूपों से पृथक् करती है।

अक्सर अभिनय के लिए कहानियों के रूपांतर से यह भ्रम पैदा होता है कि एकांकी कहानी का अभिनेय रूप है। लेकिन रचनाविधान में घनत्व और मितव्ययता की आधारभूत समानता के बावजूद कहानी और एकांकी में शिल्पगत भेद है। रंगमंच की वस्तु होने के कारण एकांकी में अभिनय और कथोपकथन का महत्व सबसे ज्यादा है। इन्हीं के माध्यम से एकांकी चरित्रचित्रण, कथानक और उसके द्वंद्व, वातावरण और घटनाओं के अनुबंध का निर्माण करता है। कहानी की तरह एकांकी वर्णन का आश्रय नहीं ले सकता। लेकिन अभिनय की एक मुद्रा कहानी के लंबे वर्णन से अधिक प्रभावशाली हो सकती है। इसलिए रंगमंच एकांकी की सीमा और शक्ति दोनों है। इसकी पहचान न होने के कारण अनेक सफल कहानीकार असफल एकांकीकार रह जाते हैं।

इसी प्रकार किसी विषय पर रोचक संभाषण या कथोपकथन को एकांकी समझना भ्रममात्र है। जीवन के यथार्थ, घटना या कथानक, चरित्रों के द्वंद्व, संकलनत्रय इत्यादि के अभाव में संभाषण केवल संभाषण रह जाता है, उसे एकांकी की संज्ञा नहीं दी जा सकती।

एकांकी की अद्‌भुत संभावनाओं के कारण आधुनिक काल में उसका विकास अनेक दिशाओं में हुआ है। रेडियो रूपक, संगीत तथा काव्यरूपक और मोनोलोग या स्वगत नाट्य इन नई दिशाओं की कुछ महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं। रेडियो के माध्यम से इन सबके क्षेत्र में निरंतर प्रयोग हो रहे हैं। रंगमंच, सदेह अभिनेताओं और अभिनेत्रियों, उनके अभिनय और मुद्राओं के अभाव में रेडियो रूपक को शब्द और उनकी ध्वनि तथा चित्रात्मक शक्ति का अधिक से अधिक उपयोग करना पड़ता है। मूर्त उपकरणों का अभाव रेडियो रूपक के लिए सर्वथा बाधा ही नहीं, क्योंकि शब्द और ध्वनि को उनके मूर्त आधारों से पृथक् कर नाटककार श्रोताओं के ध्यान को चरित्रों के आंतरिक द्वंद्वों पर केंद्रित कर सकता है। रेडियो रूपक मुश्किल से ५० वर्ष पुराना रूप है। प्रारंभिक अवस्था में इसमें किसी कहानी को अनेक व्यक्तियों के स्वरों में प्रस्तुत किया जाता था और रंगमंच का भ्रम उत्पन्न करने के लिए पात्रों की आकृतियों, वेशभूषा, साज सज्जा, रुचियों इत्यादि के विस्तृत वर्णन से यथार्थ वातावरण के निर्माण का प्रयत्न किया जाता था। अमरीका, जर्मनी, इंग्लैंड आदि पश्चिमी देशों में रेडियो एकांकी के प्रयोगों ने उसके रूप को विकसित किया और निखारा। रेडियो के लिए कई प्रसिद्ध अमरीकी और अंग्रेज कवियों ने काव्यरूपक लिखे। उनमें मैक्लीश, स्टीफ़ेन विंसेंट बेने, कार्ल, सैंडवर्ग, टाइरोम ग्थ्रुाी, लूई मैकनीस, सैकविल वेस्ट, पैट्रिक डिकिंसन, डीलन टामस आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन प्रयोगों से प्रेरणा ग्रहण कर हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के एकांकीकारों ने भी रेडियो रूपक, गीतिनाट्य और काव्यरूपक प्रस्तुत किए हैं। पर इनमें अभी अनेक त्रुटियाँ हैं।

हिंदी एकांकी का इतिहास

[संपादित करें]

हिंदी साहित्य के इतिहासकार एकांकी का प्रारंभ भारतेंदुयुग से मानते हैं। प्रसाद के 'एक घूँट' (१९२९ ई.) से दूसरा चरण, भुवनेश्वरप्रसाद के 'कारवाँ' (१९३५ ई.) से तीसरा तथा डॉ° रामकुमार वर्मा के 'रेशमी टाई' (१९४१ ई.) संकलन से चौथे चरण की शुरूआत कही गई है। किंतु उक्त कालविभाजन में उन एकांकीकारों को सम्मिलित नहीं किया गया है, जिन्होंने

१९५५ ई. के आसपास लिखना प्रारंभ किया है और आज भी लिख रहे हैं। अत: हिंदी एकांकी का अद्यतन इतिहास संक्षेप में इस प्रकार है :

(१) भारतेन्दु काल में दो प्रकार के एकांकी लिखे गए। प्रथम, अनूदित या छायांकित एकांकी तथा द्वितीय, मौलिक एकांकी। पहली कोटि में भारतेन्दु का बांग्ला के 'भारतमाता' का अनुवाद 'भारत जननी'; राधाचरण गोस्वामी द्वारा बँगला के 'भारतेर यवन' का अनुवाद 'भारतवर्ष में यवन लोग', कांचनाचार्य कृत 'धनञ्जय विजय' का छायाविष्ट रूपक, अयोध्यसिंह उपाध्याय का 'प्रद्युम्नविजय व्यायोग' आदि हैं। दूसरी कोटि में भारतेन्दुकृत 'विषस्यविषमौषधम्', 'प्रेमजोगिनी' (अपूर्ण), गीतिरूपक 'नीलदेवी' तथा 'सतीप्रताप' (अपूर्ण); राधाचरण गोस्वामी कृत 'तनमनधन गोसाई के अरपन', 'सती चंद्रावली', 'अमरसिंह राठौर', एवं 'श्रीदामा'; किशोरीलाल गोस्वामी का 'चौपट चपेट'; राधाकृष्णदास का 'दुःखिनीबाला'; अंबिकादत्त व्यास रचित 'कलियुग और घी' तथा 'मन की उमंग'; श्रीशरण का 'बालविवाह'; बालकृष्ण भट्ट के 'कलिराज की सभा', 'रेल का विकट खेल' तथा 'बाल विवाह'; प्रतापनारायण मिश्र का 'कलिकौतुक'; देवकीनंदन त्रिपाठी कृत 'जय नरसिंह की'; काशीनाथ खत्री के 'सिंधु देश की राजकुमरियाँ', गुन्नौर की रानी' एवं 'लजबो का स्वप्न'; लाला श्रीनिवासदास का 'प्रह्लाद चरित'; बदरीनारायण प्रेमघन का 'प्रयाग रामागमन'; कृष्णशरण सिंह गोपकृत 'माधुरी' आदि एकांकी आते हैं।

ऐतिहासिक आख्यान तथा समाजसुधार के प्रसंग ही उपर्युक्त एकांकियों के विषय हैं। इन्हें आधुनिक एकांकी का प्रांरभिक रूप कहा जा सकता है। कला का विकसित रूप इनमें नहीं मिलता; शैलियाँ परस्पर कुछ भिन्न हैं पर परंपरा एक ही है। उक्त एकांकी अभिनेय की अपेक्षा पाठय अधिक हैं। लेखकों का झुकाव जीवन की स्थूलता का वर्णन करने की ओर है; वृत्तियों की सूक्ष्म विवृत्ति इनमें नहीं मिलती। प्ररोचना, प्रस्तावना, सूत्रधार, नान्दी, मंगलाचरण, एकाधिक दृश्ययोजना, भरतवाक्य आदि के प्रयोग कहीं हैं, कहीं नहीं भी हैं। आकार सर्वत्र लम्बे हैं, अंक भी दृश्य और दृश्य भी गर्भांक जैसे हो गए हैं। संकलनत्रय के निर्वाह का अभाव है, शिथिल संवादों का बाहुल्य एवं विकास तथा विन्यासहीन कथायोजना का आधिक्य है। इनमें से कुछ प्रहसन के रूप में लिखे गए हैं, पर उनमें निर्मल हास्य न होकर व्यंग्य की मात्रा ही अधिक है। एकांकी के लिए अपेक्षित प्रमुख गुण कार्य (ऐक्शन) का इनमें अभाव है।

(२) एकांकी के दूसरे युग में जयशंकर प्रसाद का 'एक घूँट' लिखा गया जिसपर संस्कृत का भी प्रभाव है और बँगला के माध्यम से आए पाश्चात्य एकांकी शिल्प का भी। प्रसाद जी ने इसी बीच 'कल्याणी परिणय' भी लिखा, पर वह अभी तक अप्रकाशित है। साथ ही, इसे उनके 'चन्द्रगुप्त नाटक का एक भाग भी कहा जा सकता है। फ्रांसीसी नाटककार मोलियर के कुछ प्रहसनों का भी इस दौरान हिंदी में अनुवाद हुआ। 'एक घूँट' में एकांकी के कमोबेश लगभग सभी आधुनिक लक्षण मिल जाते हैं। विवाह समस्या का विवेचन एवं समाधान भावुकतापूर्ण शैली में किया गया है। परन्तु 'एक घूँट' एक ही रह गया; अन्य लेखकों को यह एकांकी लेखन की ओर प्रवृत्त न कर सका।

(३) एकांकी का तीसरा चरण भुवनेश्वर प्रसाद के 'कारवाँ' संग्रह से शुरू होता है जिसमें छह एकांकी हैं। १९३८ ई में 'हंस' का एकांकी अंक प्रकाशित हुआ। इसमें तत्कालीन प्रतिनिधि एकांकी प्रस्तुत किए गए। इसी बीच सत्येन्द्र का 'कुनाल', पृथ्वीनाथ शर्मा का 'दुविधा', रामकुमार वर्मा का 'पृथ्वीराज की आँखें'; सूर्यशरण पारीक का 'बैलावण या प्रतिज्ञापूर्ति' आदि प्रकाशित हुए। उदयशंकर भट्ट, सेठ गोविन्ददास प्रभृति एकांकीकार भी इसी काल में एकांकी लेखन की ओर प्रवृत्त हुए और उनके कई सशक्त एकांकी प्रकाश में आए।

इस युग में प्रख्यात और उत्पाद्य दोनों प्रकार के कथानकों को लेकर एकांकी लिखे गए। इनमें विवाहादि सामाजिक तथा साम्यावादादि राजनीतिक समस्याएँ प्रमुख रूप से उभरी हैं। प्राचीन विचारधारा की वकालत जोरदार शब्दों में की गई है, परन्तु इसके साथ नवीन को अपनाने का आग्रह भी स्पष्ट दिखाई पड़ता है। पश्चिमी विचार ओर शैली के प्रभाव को लेकर एकांकी ने अपने रूप रंग में पर्याप्त परिवर्तन किया और इसकी तकनीक में यत्किंचित् स्थिरता आई। देखा जाए, तो यह काल एकांकी विधा का परिमार्जन काल था। लेखकों ने इस समय का सदुपयोग कर अपने हाथ साधे। सन् १९३५ ई. से रेडियो प्रसारणों के अंतर्गत एकांकियों को भी स्थान दिया जाने लगा था, अत: रेडियो एकांकी अथवा ध्वनिनाटक भी काफी संख्या में लिखे जाने लगे।

(४) चतुर्थ चरण तक पहुँचते-पहुँचते एकांकी का स्वरूप, शिल्प आदि पूरी तरह स्थिर हो जाते हैं, उनका प्रामाणिक रूप सामने आता है। इससे पहले तो वह अपना सही रूप तलाशने में लगा था। डॉ° रामकुमार वर्मा के 'रेशमी टाई' एकांकीसंग्रह से इस युग का सूत्रपात हुआ, यह पहले ही बताया जा चुका है। इसके अतिरिक्त वर्मा जी के 'ऐक्ट्रेस', 'रजनी की रात', 'एक तोले अफीम की कीमत', 'परीक्षा', 'नहीं का रहस्य', 'कहाँ से कहाँ', 'चारुमित्रा', 'दस मिनट' आदि एकांकी प्रसिद्ध हैं। पहाड़ी का 'युग युग द्वारा शक्तिपूजा'; भुवनेश्वर के 'शैतान', 'स्ट्राइक', 'असर', 'ताँबे के कीड़े'; भगवतीचरण वर्मा के 'संदेह का अंत', 'दो कलाकार', 'सबसे बड़ा आदमी'; उपेंद्रनाथ अश्क कृत 'जोंक', 'समझौता', 'घड़ी', 'छठा बेटा', 'लक्ष्मी का स्वागत', 'विभा', 'तौलिये', 'आदिमार्ग'; उदयशंकर भट्ट के 'दो अतिथि', 'वर निर्वाचन', 'मुंशी अनोखेलाल', 'असली नकली', 'नेता', 'सेठ भालचंद', 'मनुमानव', 'आदिम युग'; सेठ गोविंददास रचित 'विटेमन', 'अधिकार लिप्सा', 'वह मरा क्यों', 'हंगर स्ट्राइक', 'कंगाल नहीं', 'ईद और होली'; पांडेय बेचन शर्मा उग्र के 'राम करे सो होय', 'मियाँ भाई', 'अफजल वध'; वृंदावनलाल वर्मा कृत 'पीले हाथ', 'सगुन' 'जहाँदार शाह', 'कश्मीर का काँटा', 'मानव'; एस.पी. खत्री के 'चौराहा', 'माँ', 'मछुए की माँ', 'ठाकुर का घर', 'बंदर की खोपड़ी'; विष्णु प्रभाकर के 'माँ का हृदय', 'संस्कार और भावना', 'रक्तचंदन', 'माँ बाप'; जगदीशचंद्र माथुर के 'भोर का तारा', 'रीढ़ की हड्डी', मकड़ी का जाला', 'कलिंगविजय', 'खंडहर'; लक्ष्मीनारायण मिश्र का 'एक दिन'; सद्गुरुशरण अवस्थी के 'मुद्रिका', 'कालीवध'; गणेशप्रसाद द्विवेदी के 'सोहाग की बिंदी', 'दूसरा उपाय ही क्या है', 'शर्मा जी', 'सर्वस्व समर्पण' आदि प्रमुख एकांकी इसी काल की देन हैं।

इस युग के एकांकी स्वतंत्र एवं सचेष्ट भाव से लिखे गए हैं। अत: विषय की अपेक्षा शिल्प उनमें विशेष है। बौद्धिक उत्सुकता, मानसिक विश्लेषण, अंतर्द्वंद्व की अभिव्यक्ति, हास्य तथा चुटीले व्यंग्य, संवादों की कसावट, मार्मिक स्थलों का चयन, यथार्थ प्रस्तुतीकरण के प्रति आग्रह, मनोवैज्ञानिक कार्यव्यवहार, पद्य का लगभग अभाव, सामान्य नायक की स्वीकृति, रंगसंकेत आदि उत्तरोत्तर बढ़ते गए हैं। युग की विभिन्न एवं विविध अभिरुचियों के अनुसार इस समय के एकांकियों के विषय भी अनेक रहे हैं, जिनमें प्रेम, विवाह, घृणा, क्रूरता, हत्या, पौराणिक आख्यान, लोकगाथात्मक एवं लोकविश्रुत वीरों तथा राजाओं के कृत्य, सामाजिक कुरीतियाँ, वर्गसंघर्ष, देशभक्ति, हिंदु-मुसलमान-भ्रातृत्व, सत्याग्रह, यौनाकर्षण आदि प्रमुख हैं। ध्वनि नाटक भी इस बीच अधिक संख्या में लिखे गए हैं।

(५) हिंदी एकांकी पाँचवाँ अथवा अंतिम चरण एकांकी की विविध विधाओं को लेकर प्रारम्भ होता है जिनमें मंच एवं ध्वनि एकांकी के अलावा 'ओपेन एयर एकांकी', 'चित्र एकाकी' (टेलिविजन पर दिखाए जानेवाले) 'गली एकांकी' आदि सम्मिलित किए जा सकते हैं। डॉ° लक्ष्मीनारायण कृत 'बसन्त ऋतु का नाटक', 'मम्मी ठकुराइन', 'राजरानी'; देवराज दिनेश के

'समस्या सुलझ गई', 'तुलसीदास', 'रिश्वत के अनेक ढंग'; जयनाथ नलिन रचित 'भक्तों की दीनता'; सत्येंद्र शरत् कृत 'नवजोती की नई हिरोइन'; विनोद रस्तोगी का 'बहू की विदा'; चिरंजीत के 'चक्रव्यूह' 'ढोल की पोल', (ध्वनि नाटक), पाँच प्रहसन' (संकलन); [[रेवतीशरण शर्मा]]कृत 'तलाक'; विमला लूथरा का 'अपना घर'; ज्ञानदेव अग्निहोत्री का 'रोटीवाली गली'; कृष्णकिशोर श्रीवास्तव के 'सत्यकिरण', 'मछली के आँसू', 'आस्तीन के साँप'; इंदुशेखर का 'महल्ले की आबरू'; स्वामीनाथ कृत 'आई.ए.एस.' ; राजेंद्रकुमार शर्मा के 'पर्दा उठने से पहले', 'रेत की दीवार', 'अटैची केस', अरुण रचित 'रेलगाड़ी के डिब्बे', 'भोर की किरणें'; श्रीकृष्ण कृत 'माँ जी', 'तरकश के तीर'; मुक्ता शुक्ल के 'पर्दे और परछाइयाँ'; 'भीतरी छाया', कुमार राजेंद्र कृत 'आदमखोर' (ओपेन एयर एकांकी); कंचनकुमार लिखित 'सूअर बाड़े का जमादार' (गली एकांकी) आदि इस खेवे की प्रमुख रचनाएँ हैं।

इस काल में कुछ बेमानी (ऐब्सर्ड) एकांकी भी लिखे गए हैं जिनमें सत्यदेव दुबे कृत 'थोड़ी देर पहले और थोड़ी देर बाद'; धर्मचंद्र जैन का 'चेहरों के चेहरे'; मोहन राकेश का बीज नाटक 'शायद' आदि उल्लेख्य हैं। डॉ॰ लक्ष्मीनारायण लाल, मोहन राकेश, विष्णु प्रभाकर, गंगाधर शुक्ल, विनोद रस्तोगी, उपेन्द्रनाथ अश्क, कमलेश्वर तथा मनहर चौहान ने इधर बहुत से चित्रएकांकी भी प्रस्तुत किए हैं।

पाँचवें चरण के एकांकियों में या तो पाश्चात्य रचनाप्रक्रिया को कठोरता के साथ ग्रहण किया गया है अथवा उसमें प्रतिभा और बुद्धि से नए वस्तुविधान, नई अभिव्यंजना द्वारा मौलिक रूप का निर्माण कर लिया गया है। गीतों का इनमें एकांत अभाव है, प्रकाश का जमकर उपयोग किया गया है, जिसमें पर्दों की जरूरत बहुत कुछ समाप्त हो गई है। संवाद अत्यंत कसे हुए तथा चुटीले हैं। जीवन के नए ढंग, उसकी आशाओं, निराशाओं, छोटी छोटी समस्याओं तथा प्रति दिन की सामान्य घटनाओं को लेकर ये एकांकी रचे गए हैं। चित्र एकांकियों ने 'आउट-डोर-हीनता' को तोड़ा है। इसमें अब पहाड़ी नदी की चंचलता, सड़कों पर भागती कारें, समुद्र में चलते यान, आकाश में शत्रुविमानों से जूझते 'नैट' आदि दिखाए जाते हैं। गली एकांकी ने मंच को तोड़ा है तो बेमानी एकांकियों ने दर्शकों को ही मंचपर लाकर खड़ा कर दिया है।